गुप्तकालीन अभिलेख : एक धार्मिक अध्ययन

डॉ. पिंकी यादव

आचार्य
इतिहास विभाग
बी.एस.आर. राजकीय कला महाविद्यालय
अलवर (राज.)

सारांश :
भारतीय इतिहास के अध्ययन में अभिलेखों की सर्वोत्तम विश्वसनीय स्रोत माना जाता हैं। सामान्यतः पाषाण खण्ड, पाषाण स्तम्भ, ताम्रपत्र, धर्म स्मारक, राजमहल, मुद्रा, देवालय स्मारक आदि में अंकित अभिलेख किसी भी क्षेत्र के राजनैतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक व सामाजिक पक्ष का प्रत्यक्ष साक्षी होता है। अभिलेखों से न केवल राजकीय और प्रशासनिक कार्यों की जानकारी मिलती है बल्कि राजाओं की वंशावलियाँ, दानशीलता व विजयोत्सव का भी सटीक ज्ञान प्राप्त होता है। ये अभिलेख प्राचीन भारत में राजाओं व सामंतों द्वारा भिन्न–भिन्न अवसरों पर जारी किए जाते थे। यहाँ के प्राचीन भारतीय अभिलेख प्रायः ब्राह्मी, खरोष्ठी और नागरी लिपि में अंकित है। गुप्तकालीन अभिलेखों में राजवंशों का इतिहास तथा प्रमुख शासकों का राज्यकाल वर्णित है।

प्रस्तावना
गुप्तकाल में समुद्रगुप्त, कुमारगुप्त प्रथम आदि राजाओं ने अश्वमेघ यज्ञ सम्पादित किए। किन्तु उस समय तक वैदिक–यज्ञ सम्बन्धी कर्मकाण्डों की प्रधानता शनैः शनैः कम होने लगी। वैदिक देवताओं का स्थान अब पौराणिक देवताओं ने ले लिया। इन्द्र, वरुण, सूर्य, सोम, अग्नि, मरुत, पर्जन्य, उषा, अदिति आदि के स्थान पर ब्रह्मा, विष्णु, शिव, लक्ष्मी आदि देवों की उपासना प्रारम्भ हुई।[1] किन्तु फिर भी धनद, वरुण, इन्द्र और अन्तक वैदिक देवों की तुलना समुद्रगुप्त से की गयी है।[2] यह इस बात का द्योतक है कि उपर्युक्त वैदिक देवता विष्णु, शिव आदि से अधिक महिमामय और शक्तिशाली समझे जाते थे। किन्तु उनकी उपासना में समाज का विश्वास कम हो गया था। वैष्णव, शैव, शाक्त, सौर आदि धार्मिक सम्प्रदाय वैदिक धर्म की ही परम्परा में विकसित हुए। इसमें ब्रह्मा का महत्व विष्णु और शिव की अपेक्षा कम रहा। प्रमुख रूप से विष्णु और शिव ही सर्वत्र पूजे जाने लगे और उन्हीं की प्रतिमाएं तथा देवालय निर्मित होने लगे। इन देवताओं में ब्रह्मा सृष्टि के जनक, विष्णु उसके पालनकर्ता और शिव उनके संहारक माने जाने लगे। यद्यपि देवताओं का राजा इन्द्र थे फिर भी विष्णु और शिव को सर्वोच्च स्थान मिला।

वैष्णव धर्म :
गुप्तकाल में वैदिक देवताओं के स्थान पर पौराणिक देवता विष्णु का महत्व बहुत अधिक बढ़ गया। उनकी कल्पना आदि पुरुष के रूप में की गयी और उन्हें 'भागवत' की संज्ञा प्रदान की गयी। उन्हीं के नाम पर उनका सम्प्रदाय 'भागवत' कहलाया। किसी समय इस भागवत धर्म में विष्णु नामक वैदिक देवता प्रविष्ठ हुए। वैदिक मुग में वह इन्द्र के सहायक माने जाते थे। किन्तु अब उनका स्थान सर्वप्रमुख हो गया। इन्हीं विष्णु में नारायण और वासुदेव नामक देवता भी समाहित हो गये। इस प्रकार गुप्तकाल में वैष्णव धर्म का पर्याप्त विकास हुआ।
गुप्तकालीन बहुसंख्यक प्रतिमाओं से वैष्णव धर्म की लोकप्रियता पर पर्याप्त प्रकाश पड़ा है। अब विष्णु के चतुर्भुजी रूप का नवीन प्रचलन हुआ। सिक्कों और प्रतिमाओं में गरुड़ को वाहन के रूप में अंकित किया जाने लगा। नारायण, विष्ण और वासुदेव समन्वित इस धर्म में एक नये तत्व अवतारवाद का प्रवेश हुआ। यह माना जाने लगा कि जब–जब धर्म का पतन होता है और अधर्म की उत्पत्ति होती है तब भगवान् विष्णु धर्म की पुर्न–स्थापना के लिए अवतार लेते हैं। वराह, नृसिंह, वामन और कृष्ण इन चारों अवतारों को बहुत प्रसिद्धि मिली। इन देवताओं से संबंधित अनेक शिलालेख मिले है।
गुप्तकाल में विष्णु–उपासना की परिधि में उनकी भार्या लक्ष्मी का समावेश हुआ। श्री और लक्ष्मी नामक देवियों की कल्पना वैदिक काल से प्रारम्भ हुई। कालांतर में इन दोनों देवियों को एक मानकर उनकी प्रतिष्ठा धन, ऐश्वर्य तथा समृद्धि की देवी के रूप में कायम हुई। गुप्तकाल तक उनका यह रूप निखर आया। तत्कालीन अभिलेखों में विष्णु के साथ लक्ष्मी का सर्वप्रथम उल्लेख स्कंदगुप्त के जूनागढ़ लेख में हुआ है।[3] तदनन्तर उनका उल्लेख मिहिरकुल के ग्वालियर लेख में है।[4] कालिदास ने अपने ग्रंथों में लक्ष्मी को विष्णु–भार्या कहा। गुप्तकालीन मूति–शिल्पों में गजलक्ष्मी के विविध अंकन उपलब्ध हैं। गुप्त नरेशों ने अपने सिक्कों पर भी लक्ष्मी को अंकित कराया।

भगवान् विष्णु के प्रति लोगों की प्रगाढ़ भक्ति भावना के विवरण तत्कालीन लेखों में दृष्टव्य हैं। उनमें विष्णु मन्दिर में बलि, चरु, सत्र तथा अन्य प्रकार के अनुष्ठानों के निमित्त व्यय किये जाने तथा भूमि एवं गांव आदि दान दिये जाने के उल्लेख हुए हैं। चन्द्रगुप्त द्वितीय के मेहरौली लौह–स्तम्भ लेख में वर्णित है कि उसने अपने विजयकीति को स्थायी करने के लिए विष्णुपद नामक पर्वत पर विष्णु– ध्वज स्थापित किया था–

'तेनायं प्रणिधाय भूमिपतिना ..... विष्णोध्वंजः स्थापितः।।'[5]

गुप्तकालीन अभिलेखों में विष्णु की अर्द्धांगिनी के अनेक नाम मिलते हैं। स्कन्दगुप्त के जूनागढ़ प्रस्तर अभिलेख में विष्णु को लक्ष्मी का शाश्वत धाम बताया गया है। लक्ष्मी का निवास कमल पर है। अफसड़ अभिलेख में माधव और श्री का वर्णन है तथा तुसाम प्रस्तर अभिलेख में कृष्ण और जाम्बवती के नाम का उल्लेख किया गया है। श्री आरै ब्राह्मी मूलरूप से दो विभिन्न देवियां थीं, जो ब्राह्मणों और उपनिषदों के समय एकाकार हो गयीं। श्री का प्राचीनतम उल्लेख ऋग्वेद में प्राप्त होता है। श्री का अर्थ है सौन्दर्य, कान्ति और सम्पदा। भारतीय परम्परा में श्री को ऐश्वर्य और समृद्धि की देवी माना जाता है। विष्णु के साथ इस जनप्रिय देवी श्री–लक्ष्मी का संयोग गुप्तकाल में वैष्णव धर्म के बढ़ते हुए प्रभाव को प्रदर्शित करता है। राय चौधरी का मत है कि नारायण के पार्श्व में लक्ष्मी की प्रतिष्ठा तत्कालीन गुप्त सम्राटों के पार्श्वों में आसीन होने वाली राजमहिषियों के अनुरूप है। यह स्त्रियों के अधिकार की सूचक है। सुवीरा जायसवाल का कथन है कि नारायण के पार्श्व में श्रीलक्ष्मी की उपासना पुराणों में वर्णित दाम्पत्य जीवन के आदर्श को प्रस्तुत करती है। इसमें पत्नी को पति का सहायक माना जाता है। विष्णु के साथ लक्ष्मी के सम्मिलन का प्रथम अभिलेखीय साक्ष्य गुप्तकाल में प्राप्त होता है। स्कन्दगुप्त कालीन जूनागढ. प्रस्तर अभिलेख में विष्णु का उल्लेख कमल में निवास करने वाली देवी लक्ष्मी के स्थायी धाम के रूप में है। मिहिरकुल कालीन ग्वालियर प्रशस्ति में विष्णु को देवी श्री को अपने वक्षस्थल में धारण करने वाला कहा गया है।[6]

गुप्तकाल में वैष्णव घर्म का प्रसार न केवल पूरे देश में, अपितु सर्वप्रथम दक्षिण पूर्व एशिया के भारतीय उपनिवेशों तक व्यापक रूप में फैला था।

शैव धर्म :

वैष्णव धर्म के समान शैव धर्म भी अत्यन्त प्राचीन है। पुराणों में शैव धर्म के पर्याप्त विवरण उपलब्ध हैं। गुप्तवंश के शासनकाल में शैवधर्म का पर्याप्त विकास हुआ। चन्द्रगुप्त द्वितीय के मथुरा स्तम्भलेख से विदित होता है कि इस नगर में पाशुपत धर्म के लकुलीश सम्प्रदाय का विकास हो रहा था। इस सम्प्रदाय का तत्कालीन आचार्य उदिताचार्य भगवत् कुशिक की दसवीं पीढ़ी में आता था। इससे ज्ञात होता है कि भगवत कुशिक इस सम्प्रदाय का एक प्रधान आचार्य था। चन्द्रगुप्त द्वितीय का सेनापति वीरसेन शाब शैव मतावलम्बी था। उसने भगवान के प्रति अपनी दृढ़ भक्ति के कारण उदयगिरि की पहाड़ी (विदिशा जिला, म.प्र.) में शैवों के आवास के लिए एक गुफा का निर्माण कराया था।

गुप्तकालीन अभिलेखों में शिव के अनेक नामों का उल्लेख हुआ है। प्रयाग–प्रणस्ति में पशुपति शिव की जटाजूट से पीतवर्णी जल वाली गंगा नदी निकलने का उल्लेख हुआ है। चन्द्रगुप्त द्वितीय के उदयगिरि लेख से पता चलता है कि उसके सचिव बीरसेन शाव ने शिव–पूजा के निमित्त एक मन्दिर का निर्माण करण्या– **'भक्त्या भगवतः शंभोर्गुहामेतामकारयत'**।[7] इसी शासक के मथुरा–स्तम्भ लेख में वर्णित है कि उस समय मथुरा में पाशुपत का लकुलीश सम्प्रदाय अधिक लोकप्रिय हुआ। इस लेख में चार पाशुपताचार्यों का नामोल्लेख है जिनके अनुयायियों ने मन्दिर बनवाया था। इनके अतिरिक्त गुप्तराजाओं एवं उनके सामन्तों के अनेक लेखों में भगवान् शिव की स्तुति की गयी है। इस युग में निमित शैव धर्म से सम्बन्धित प्रचुर वास्तुगत प्रमाण उपलब्ध हैं। उनमें भुमरा का शिव मन्दिर और नचना का शिव–पार्वती मन्दिर प्रमुख हैं। शिव प्रतिमाएं विविध रूपों में निर्मित हुई। मानव तथा लिंग प्रतिमाओं के अतिरिक्त इनका समन्वित रूप मुखलिग प्रचलित हुआ। उदयगिरि, मंदसौर, खोह, शंकरगढ़, भुमरा, पन्ना, भीटा और झूसी से एक मुख से लेकर आठमुखीय तक लिग प्राप्त हुए हैं।

विष्ण की अपेक्षा शिव–परिवार में देवताओं की बहुलता है। इनमें उनकी पत्नी पार्वती तथा पुत्र कार्तिकेय और गणेश तथा उनके गण एवं वाहन नंदी सम्मिलित हैं।

गणेश : गणेश शिव के पुत्र कहे गये हैं। अतएव शिव परिवार में उनका स्थान महत्वपूर्ण है। गुप्तकाल से पूर्व वैदिक पौराणिक देवताओं में गणेश का कोई स्थान न था। गुप्तकालीन अभिलेखों में भी गणेश का उल्लेख प्राप्त नहीं होता। सम्भवतः पांचवी तथा छठी शती से गणेश की पूजा भारतीय समाज में प्रचलित हुई।

कार्तिकेय : कार्तिकेय को 'कुमार' या 'महासेन' की संज्ञा दी गयी। शिव–पुत्रों में गणेश शिव के गणों के प्रधान माने जाते हैं तथा कार्तिकेय युद्ध में सम्बन्धित हैं। उनकी पूजा देवसेना के सेनापत्ति के रूप में भो होती है। अतः उन्हें युद्ध का देवता कहा गया। गुप्तयुग की स्वर्ण मुद्राओं पर कार्तिकेय का अंकन मिलता है। कुमारगुप्त प्रथम की मुद्राओं का एक प्रकार कातिकेय प्रकार के नाम से ही प्रसिद्ध है। कार्तिकेय का बाहुन मयूर है।

शक्ति : वैष्णव और मैव सम्प्रदायों के अन्तर्गत शाक्त सम्प्रदाय का वर्चस्व अद्यावधि विद्यमान है। वास्तव में शक्ति जमा और पार्वती का ही विकसित तांत्रिक दार्शनिक रूप है। कन्या रूप में उमा और माता रूप में पार्वती वाली शक्ति क्रमशः कपालाभरणा काली वा सिंहवाहिनी दुर्गा बन महाकाल की शक्ति बनी। शक्ति में उसकी महिमा विष्णु और शिव दोनों के ही प्रभाव का सम्मिश्रण है।

सप्त मातृका : जब शक्ति के सभी कार्य सम्पन्न हो गये तब समस्त देवताओं की शक्तियां संयुक्त हो जाने के कारण सप्त मातृका कहलाये। इनके नाम ब्रह्माणी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही, इन्द्राणी, यमी (चामुण्डा) है, जो क्रमशः ब्रह्मा, शिव (महेश्वर), कार्तिकेय (कुमार), विष्णु, वराह, इन्द्र और यम की पत्नियां हैं और उनकी शक्तियों के रूप में पूजनीय रही है। गुप्तकाल में सप्तमातृकाओं का वैदिक अथवा पौराणिक देवताओं के साथ समन्वय हुआ जिसके फलस्वरूप केवल माहेश्वरी, कौमारी और वैष्णवी की पूजा विशेष रूप से प्रचलित रही। तत्कालीन अभिलेखों से ज्ञात होता है कि उस काल में मातृकाओं के स्वतन्त्र मन्दिरों का निर्माण भी होने लगा था ।

सूर्य : वैदिककालीन देवों में सौर देवता का नाम उल्लेखनीय है। सूर्य की पूजा का प्रचलन गुप्त– काल के पूर्व से जारी रहा। गुप्तकालीन प्रतिमाओं में सूर्य को चार घोड़ों के स्थान पर सर्वप्रथम सात घोड़ों के रथ पर आरूड़ जयवा दोनों हाथों में कमल लिये हुए स्वतन्त्र रूप से वेश और अव्यंग धारी प्रदर्शित किया गया। मंदसौर के लेख में लाट देश के रेशम के बुनकरों द्वारा एक सूर्य मन्दिर के निर्माण का उल्लेख किया गया है,[8] जिसका बाद में जीर्णोद्धार कराया गया। स्कन्दगुप्त के एक लेख में सूर्य मन्दिर हेतु दान दिये जाने का उल्लेख है– **पायाद्वः स जगत्पिधान पुटभि–द्रशम्या करो भास्करः ।**[9]

जैन धर्म :

जैन धर्म का प्रचार एवं प्रसार गौतमबुद्ध के समय से निरन्तर होता रहा। इस धर्म के चौबीस तीर्थकरों में से अन्तिम प्रवर्तक महावीर गौतम बुद्ध के समकालीन थे। कालांतर में श्वेतांबर और दिगम्बर शाखाएं क्रमशःउत्तर तथा दक्षिण भारत में विकसित हुईं। इनके उपदेशों में ईश्वर की सत्ता को नहीं माना गया। कर्म की प्रेरणा देते हुए वैराग्यमय जीवन को सर्वोत्तम माना गया। सांसा रिक तत्वों की व्याख्या जीव–अजीब इन दो रूपों में हुई। उनका न्याय शास्त्र स्याद्वाद कहलाया।

गुप्तकालीन लेखों से ज्ञात होता है कि उस समय वैदिक और बौद्ध धर्म मानने वालों की अपेक्षा जैन धर्म के अनुयायी संख्या में कम थे। इसका कारण इस धर्म का कठोर आचरण था। उत्तर भारत में उद्भूत होने पर भी इस धर्म का व्यापक प्रचार–प्रसार दक्षिण और पश्चिम भारत में हुआ।

वैदिक और बौद्ध धर्म के समान तीर्थकर–पूजा भी मन्दिर में प्रतिमा स्थापित कर की गयी। स्कंदगुप्त के कहौम (जिला गोरखपुर) के गु.सं. 141 (ई.460–461) के लेख में भद्र नामक व्यक्ति द्वारा 'आदिकर्तृन' प्रतिमा सहित स्तम्भ स्थापित किए जाने का उल्लेख है– श्रेयोर्त्थं भूतभूत्यै पथि नियमवताम/ अर्हतां आदिकर्तृन्।[10] बुधगुप्त के काल के एक ताम्रलेख में अनेक जैन विहारों के निर्माण का उल्लेख है। उदयगिरि के जैन गुहा लेख में पार्श्वनाथ की प्रतिमा स्थापना का वर्णन है।[11]

गुप्तकाल में अभिलिखित तीर्थंकर प्रतिमाएं भी निर्मित हुई। इनमें दुर्जनपुर (जिला विदिशा) की 'रामगुप्त' नामांकित तीन तीर्थकर प्रतिमाएं उल्लेखनीय है। इनसे सर्वप्रथम महाराजाधिराज श्री रामगुप्त की ऐतिहासिकता सिद्ध हुई। मथुरा से अनेक तीर्थकर प्रतिमाएं मिली हैं जिनसे जैनमत के व्यापक प्रचार की पुष्टि होती है।

बौद्ध धर्म :

गौतम बुद्ध द्वारा जो उपदेश प्रसारित किये गये उन्हें उनके अनुयायियों ने आत्मसात कर बौद्ध धर्म को ईश्वरीय रूप में ग्रहण कर प्रसिद्ध किया। बौद्ध धर्म की ईश्वर में अनास्था और आत्मा में विश्वास न होने के कारण इसका मूलाधार शून्यता अथवा अनात्मता है। कालांतर में इस धर्म के हीनयान और महायान दो संप्रदायों का उदय हुआ। हीनयान संप्रदाय के विपरीत महायान का आत्मा तथा धर्म के अनस्तित्व में विश्वास होने के कारण बुद्ध, बोधिसत्व और अवलोकितेश्वर की मूर्तियां निर्मित कर मन्दिरों में स्थापित की गयीं।

गुप्तकाल में बौद्ध धर्म पर वैदिक भक्ति का अत्यधिक प्रभाव पड़ा। अतः शक और कुषाण काल की अपेक्षा इस समय बौद्ध धर्म के साथ–साथ वैदिक धर्मों को भी पूर्ण समानता मिली। फाह्यान के यात्रा विवरणों में अनेक स्थानों के बौद्ध–विहार, चैत्य, स्तूप आदि का वर्णन है। किन्तु तत्कालीन लेखों से ज्ञात होता है कि राजनीतिक स्थिति में परिवर्तन होने के कारण उस समय बौद्ध धर्म पतनोन्मुख था। कपिलवस्तु, कोसल, श्रावस्ती और वैशाली जैसे प्रसिद्ध बौद्ध कंन्द्रों के स्थान पर उस समय पाटलि– पुत्र, उज्जयिनी, और विदिशा के भागवत केन्द्रों तथा मथुरा, सारनाथ, बोधगया, कौसांबी आदि के बौद्ध स्थलों को विशेष महत्व प्राप्त हुआ।

मानकुंवर प्रस्तर मूर्ति अभिलेख से ज्ञात होता है कि भिक्षु बुद्धमित्र ने मंदिर में एक बुद्धमूर्ति की प्रतिष्ठा की थी। इसी प्रकार सारनाथ प्रस्तर अभिलेख में हरिगुप्त द्वारा अपने गुरु तथा स्वयं के माता–पिता की पुण्यवृद्धि के लिए शास्ता की एक प्रतिमा निर्माण का कथन हैं। सांची पाषाण बौद्ध अभिलेख से ज्ञात होता है कि उपासक सनसिद्ध की पत्नी उपासिका हरिस्वामिनी द्वारा अपने माता–पिता के लिए काकनादबोट (सांची) के पवित्र महाबिहार में चारों दिशाओं से आये संघ के सदस्यों को बारह दीनारों की अक्षयनीवी दान में दी गई थी।[12]

गुप्तवंशी राजाओं के वैष्णव धर्मानुयायी होते हुए भी उनकी धर्म सहिष्णु नीति के कारण बौद्ध धर्म का किंचित परिवर्तन के साथ पर्याप्त प्रचार–प्रसार हुआ। विहारों एवं चित्रित गुफाओं की उपलब्धि बौद्ध–धर्म के निरन्तर विकास की द्योतक है। फाहियान के विवरणों में उल्लेख है कि मथुरा में लगभग 300 भिक्षु निवास करते थे। अजन्ता, ऐलोरा, नागार्जुनीकोण्डा की गुहाएं बौद्ध भिक्षुओं की प्रमुख आवास केन्द्र थीं। युवानच्चांग के विवरणों से पता चलता है कि स्कंदगुप्त और उसके उत्तराधिकारियों ने नालंदा में संघाराम बनवाये। मथुरा और सारनाथ में बुद्ध की अनेक प्रतिमाएं निर्मित हुई। इनमें से कई प्रतिमाओं पर गुप्तकालीन लेखांकित हैं। इस प्रकार गुप्तकाल में वैदिक भक्ति की नीति के समन्वयात्मक स्वरूप के कारण बौद्ध धर्म का निरन्तर उन्नयन हुआ।

निष्कर्षतः गुप्तकालीन राजाओं की धार्मिक सहिष्णु नीति के कारण ही उस काल में वैदिक, बौद्ध एवं जैन तीनों धर्मों को पूर्ण स्वतन्त्रता मिली। अपने आपको परम भागवत की उपाधि से विभूषित करने वाले राजाओं ने अन्य धर्मों की उन्नति में पर्याप्त योगदान दिया। परमभागवत चन्द्रगुप्त का सेनापति आम्रकार्दव बौद्ध था। उस समय धार्मिक पूजा पद्धति की पूर्ण स्वतन्त्रता थी तथा सार्वजनिक दान के समय समस्त धर्मों को समान दृष्टि से देखा जाता था। अनेक लेखों में इस प्रकार के धार्मिक दानों के उल्लेख उपलब्ध हैं। बौद्ध और अबौद्ध व्यक्तियों में परस्पर शास्त्रार्थ हुआ करते थे। इसका उल्लेख महानाम के गया अभिलेख में मिलता है। इन शास्त्रार्थों से विपरीत मतावलम्बियों के मध्य परस्पर विश्वास उत्पन्न होता था। गुप्त शासकों में जहां एक ओर रामगुप्त ने जैन प्रतिमाओं की स्थापना की वहीं चन्द्रगुप्त द्वितीय और स्कन्दगुप्त ने विष्णु–मन्दिर बनवाये। समुद्रगुप्त और कुमारगुप्त प्रथम ने वैदिक यज्ञ संपादित किये और स्कंदगुप्त के पश्चात् के राजाओं ने बौद्ध महाविहार निर्मित कराये। इस प्रकार गुप्त शासकों की उदार धार्मिक नीति के फलस्वरूप समस्त धर्मों को राजाश्रय प्राप्त हुआ एवं प्रजा को धार्मिक स्वतंत्रता मिली। अपनी इसी सहिष्णु नीति के कारण गुप्त युग की धार्मिक क्रांति इतिहास में स्वर्णयुग के नाम से प्रसिद्ध हुई।

संदर्भ:

1 उपाध्याय, भगवतशरण, गुप्तकाल का सांस्कृतिक इतिहास, हिन्दी समिति, सूचना विभाग, उत्तरप्रदेश, लखनऊ, 1969, पृ. 315
2 फ्लीट, जे.एफ., कार्पस इंस्क्रिप्शन इण्डिकेरम, पृ. 71
3 गोयल, श्रीराम, भारतीय अभिलेख संग्रह, राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, 1982, पृ. 73
4 गोयल, श्रीराम, भारतीय अभिलेख संग्रह, राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, 1982, पृ. 199
5 गुप्त, परमेश्वरीलाल, गुप्त साम्राज्य, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 1989, पृ. 4
6 जायसवाल, सवीरा, वैष्णव धर्म का उद्भव और विकास, ग्रंथ शिल्पी, नई दिल्ली, 2005, पृ. 89
7 उपाध्याय, वासुदेव, गुप्त अभिलेख, बिहार ग्रंथ अकादमी, पटना, 1992, पृ. 83
8 वाजपेयी, कृष्णदत्त, ऐतिहासिक भारतीय अभिलेख, पब्लिकेशन्स स्कीम, जयपुर, 1992, पृ. 145
9 उपाध्याय, वासुदेव, गुप्त अभिलेख, बिहार ग्रंथ अकादमी, पटना, 1992, पृ. 67
10 जर्नल आफ एशियाटिक सोसायटी ऑफ बंगाल, कलकत्ता, भाग–15, पृ 5
11 फ्लीट, जे.एफ., कार्पस इंस्क्रिप्शन इण्डिकेरम, पृ. 259–60
12 उपाध्याय, वासुदेव, गुप्त अभिलेख, बिहार ग्रंथ अकादमी, पटना, 1992, पृ. 191